प्रथम अध्याय

सन्त कबीर एवं अनुरागसागर

सन्त कबीर अद्‌भुत प्रतिभा सम्पन्न एवं महिमा मण्डित साधु पुरुष थे जिनका आविर्भाव पन्द्रहवी शताब्दी में हुआ था। सिकन्दर लोदी कबीर का समकालीन था। सिकन्दर लोदी के पिता बहलोल लोदी ने उत्तर भारत में अफगान साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया। एक बार जब वह दिल्ली जा रहा था तो जलाली नामक नगर के निकट अस्वस्थतावश वह सन् 1489 में मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस समय उसका पुत्र निजाम खाँ राजधानी में सुल्तान के नायब पद पर था। बहलोल लोदी की मृत्यु के पश्चात् जलाली में निजाम खाँ का राज्याभिषेक कर उसे सिकन्दर शाह की उपाधि से विभूषित किया गया और निजाम खाँ को सिकन्दर लोदी के नाम से पुकारा जाने लगा।

कबीर के जन्म के विषय में यह छन्द प्रचलित है –

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ भरा।।

जेठ सुदी बरसायत को, पूरण मासी प्रकट भए।।

यहाँ बरसायत पद पर ध्यान देना अपेक्षित है। बरसायत या बरसाइत वट सावित्री का अपभ्रंश है। यह वटसावित्री का व्रत ज्येष्ठ शुद्ध पूर्णमासी को होता है। इसी दिन कबीर साहब नीमा और नीरू को मिले थे इसीलिये कबीर पंथियों में **'वरसाइत महातम'** पन्थ की कथा प्रचलित है और कबीरपंथी उस दिन बहुत उत्सव मनाते हैं।[1]

उपर्युक्त के अनुसार कबीर का जन्म संवत् 1455 के ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार को हुआ था। विद्वानों ने संवत् 1575 में कबीर साहब का देहावसान माना है। मत–मतान्तर होने पर भी प्रायः सभी विद्वान् कबीर का जन्म काशी में मानते है। अपने जन्म–स्थल बनारस के साथ कबीर साहब वैसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध बताते हैं जैसा जल और मछली का होता है।

ज्यों जल छाड़ि बाहर भयो मीना।

पूरब जनम है तप का हीना।।

अब कहु राम कवन गति मोरी।

तजिले बनारस मति भई थोरी।।

बहुत बरस तफकिया कासी।

मरनु भया मगहर को वासी।

शरीर त्यागने से पूर्व कबीर साहब ने आमी नदी के किनारे एक छोटी सी कोठरी में लेटकर चादर ओढ़ ली थी। बाहर से ताला बन्द करा दिया और एक अलौकिक ध्वनि के साथ स्वर्ग सिधार गये। ताला खोलने पर जब वहाँ फकत कमल के फूल और दो चद्दर हीं पाई गईं तब उनके हिन्दू–मुस्लिम शिष्यों ने आपस में बाँटकर अपनी विधि का निर्वाह किया।[2] हिन्दुओं ने अपने हिस्से के अवशेषों का अग्निदाह सम्पन्न कर राख को काशी ले जाकर समाधस्थ किया। आज यह स्थान काशी में **कबीर चौरा** के नाम जाना जाता है। उनके मुस्लिम शिष्यों ने मगहर में उनकी कब्र बनाई।

कबीर दास का लालन–पालन एक जुलाहा परिवार में हुआ था। कबीर साहब ने स्वयं को अनेक बार जुलाहा एवं कोरी कहा है।

जाति जुलाहा नाम कबीरा.....[3]

तथा

हरि को नाँव अभैपददाता कहै कबीरा कोरी।[4]

कबीरदास जी के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में जन–साधारण तथा विशेषकर कबीर–पंथियों में अनेक कथाएं प्रचलित हैं किन्तु उनके जन्म की प्रामाणिक पुष्टि अनुराग सागर से ही होती है। वहाँ स्पष्ट वर्णित है कि नीरू तथा उसकी पत्नी नीमा ने उनका पालन–पोषण किया। अधिकांश विद्वान् वाराणसी (काशी) के रामानन्द जी को इनका गुरु स्वीकार करते हैं।

डा. हरिहर त्रिवेदी ने बोधानन्द संस्कृत टीका (पृ. 16, भाग 1) जो लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली से प्रकाशित है; में कबीर नाम की कुछ व्युत्पत्तियाँ दी है जिनमें एक अर्थ ज्ञानी भी है जैसे[5]–

(1) कु = आधार, इरा – वाणी, कविर (कबीर)

(2) कू – ईरद् प्रत्यय = कबीर **(मंगलाचरण श्लोक 3 और रमैनी 1 की व्याख्या)**

(3) क = वेद और कैवल्योपनिषद्, बो = विज्ञान, 2 = वह्नि–बीज = कबीर

कबीर शब्द के व्यापक अर्थ – (रमैनी की संख्या के साथ संख्या कोष्ठक में दी है)

वेद (9), वेद और धोर (10), ज्ञानी (14), वेद और गुरु (20) वेद (25, 52), कर्म कुशल (28), वसिष्ठ आदि महर्षि (54), साधु (56, 62, 78), ब्रह्म (1, 57), श्रीकृष्ण (58), शास्त्र (80)

बोधानन्द की उपर्युक्त टीका में 'कबीर' के पर्यायवायी शब्द भी दिये हैं जैसे ब्रह्म, श्रुति, जीवनमुक्त, शास्त्र, मुमुक्षु, स्वात्माराम, **ज्ञानी**, ज्ञानी–विज्ञानवेत्ता, कर्मकाण्डी, सद्गुरु तथा विद्वान्।

अनुराग सागर में कबीर साहब ने स्वयं के लिए **'ज्ञानी'** नाम का प्रयोग किया है –

ज्ञानी वेगि जाहु संसारा। यमसों जीवन करहु उबारा।
काल देत जीवन कहँ त्रासा। काटो जाय तिनहि को फांसा।[6]

कबीर साहब; शिष्य धर्मदास से कहते हैं कि मैं पुरुष के चरणों में सतलोक में बैठा था तभी सत्त पुरुष ने मुझे आवाज दी और कहा कि ज्ञानी जी; काल जीवों को बहुत सता रहा है। तुम मर्त्यलोक में जाओ और नामदान देकर उनको चेताओ। अनुराग सागर में अनेक स्थलों पर **बीरा** नाम का प्रयोग हुआ है जो कबीर के अर्थ में ही है –

पुरुष नाम सुमिरण सहदाना। बीरा सार कहो परवाना।[7]

अनुराग सागर सन्त कबीर की ही रचना है। कबीर का विधवा ब्राह्मणी से जन्म, नीरू–नीमा द्वारा पालन–पोषण, सिकन्दर लोदी की घटना, जगन्नाथ पुरी के मन्दिर की स्थापना आदि घटनाएं जो किंवदन्ती रूप में हैं या जनसामान्य के संज्ञान में नहीं हैं, वे सभी अनुराग सागर में हैं। अनुराग सागर की प्रामाणिकता में इसे सिद्ध किया जायेगा।

यह अनुराग सागर ग्रन्थ संवत् 2038 (सन् 1981) में लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित हुआ तथा कबीराश्रमाचार्य स्वामी युगलानन्द बिहारी द्वारा सम्पादित है। अनुराग सागर की प्रस्तावना में श्री युगलानन्द बिहारी जी ने लिखा है कि अनुराग सागर आज तक लखनऊ, पटना, काशी नरसिंहपुर और बम्बई में भिन्न–भिन्न रूप से

छप चुके हैं जिनमें से अन्तिम बार बम्बई में जो ग्रंथ छपा है, वह उनके नाम से है। अनुराग सागर के मुद्रण से पूर्व उनके पास इसकी तेरह हस्त लिखित प्रतियाँ थीं तथापि प्रेस वालों की शीघ्रता के कारण उसे पूर्ण रूप से सब प्रतियों द्वारा शुद्ध करने का अवसर नहीं मिल सका। इन सब प्रतियों में बहुत सी विभिन्नताएं थी अतः वे किसी पुरानी से पुरानी प्रति को खोजने में लग गये। परिणाम यह हुआ कि छपी और हस्त लिखित कुल मिलाकर छयालीस (46) प्रतियाँ उनके पास हो गईं। उन्होंने देखा कि भिन्न–भिन्न शाखा वालों ने स्वयं को श्रेष्ठ एवं सम्यक् सिद्ध करने के लिए परस्पर निन्दा एवं खण्डन–मण्डन किये हैं अतः आपने कई दिनों तक विचार किया तथा कई महीनों के कठिन परिश्रम के बाद इस अनुराग सागर का सम्पादन कर इसे प्रकाशित कराया। किसी भी मठ के साधु सन्त और महन्त ने इतना सुन्दर और कठिन परिश्रम अनुराग सागर के लिए नहीं किया।

स्वामी युगलानन्द बिहारी जी ने उन छयालीस प्रतियों का ब्यौरा भी भूमिका में इस प्रकार दिया है। जैसे –

- एक प्रति जो सबसे पुरानी है, प्रमोद गुरु बाला पीर साहब के समय की लिखी हुई जान पड़ती है क्योंकि वंशावली लिखते हुए लिखने वाले ने यहीं तक वंशों का नाम लिखा है और वह समय भी उन्हीं का था।
- दो प्रतियाँ कमल नाम साहब के समय की लिखी हैं, इसके अतिरिक्त आठ प्रतियाँ और भी संवत् 1860 से लेकर 1930 तक की लिखी हुई मुझे अपने पिता श्री जी के पुस्तकालय से प्राप्त हुईं थीं।
- एक प्रति अमोल नाम साहब के समय की लिखी है जो गया जिले के किसी सन्त की लिखी हुई है।
- एक प्रति सुरत सनेही नाम साहब के समय की लिखी है जो खास सिंघौडी में बैठकर लिखी गई है, जो खास मुकाम सहरांव पो. कांथा जिला उन्नाव के कबीरपंथी सेवक आसादीन तम्बोली से मिली थी, जिसके वंश में कई पीढ़ी तक महन्ती चली आई थी।
- पाँच प्रतियाँ पाक नाम साहब के समय की लिखी हुई हैं।

- आठ प्रतियाँ प्रकट नाम साहब के समय की लिखी हुई हैं जिसमें एक तो धीरज नाम साहब की प्रधान धर्मपत्नी श्री रानी सूरज कुँवर साहब के हाथ की लिखी हुई है।
- नौ प्रतियाँ प्रकट नाम साहब के पश्चात् की लिखी हैं जिनमें से चार प्रतियों ही में वंशावली धीरज नाम साहब तक और शेष पाँच में पं0 श्री उग्रनाम साहब तक लिखी है, इसी से एक प्रति वह भी है जो कबीर धर्मनगर के कबीर धर्म प्रकाश में छपने के लिए लिखाई गयी थी किन्तु छप नहीं सकी।
- एक प्रति बांधोगढ़ सिलौडी स्थान के वंशगुरु गोसाई मधुकर नाम साहब के पुत्र श्री गोपालदास जी के हाथ की लिखी है, जो मुकाम कसबा जिला पूर्निया के महन्त श्री हरिचरण दास जी साहब ने कृपा करके ग्रन्थ छपते समय भेज दी थी।
- दो प्रतियाँ छपरा जिले के बांधागढ़ के अनुयायी महन्तों की लिखी हैं।
- दो प्रतियाँ जागू साहब के घराने वालों की लिखी हुई हैं। एक और प्रति काशी के अनुयायी किसी साधु ने महन्त श्री रंगूदास जी के समय लिखी थी, वह है। शेष पाँच प्रतियाँ, पाँच स्थानों की छपी हुई प्रतियाँ हैं।

इन छयालीस टीकाओं के अतिरिक्त अनुराग सागर को राधास्वामी तरन–तारन, पंजाब के सेक्रेटरी बलविन्दर सिंह द्वारा "अनुराग सागर" (सत्संग संग्रह – बाबा केहर सिंह) को तीन भागों में प्रकाशित कराया है। यहाँ मैंने स्वामी युगलानन्द बिहारी द्वारा सम्पादित अनुराग सागर को आधार बनाया है।

(क) अनुराग सागर की प्रामाणिकता

हिन्दी सन्त साहित्य; चेतना का अपार सागर है सन्तों के द्वारा लोक–हितार्थ सूरसागर, रत्न सागर, अनुरागसागर, पद्मसागरआदि अनेक ग्रन्थों की रचना की गई है। सन्त कबीर साहब के 'बीजक' ग्रन्थ से तो सभी परिचित हैं किन्तु भारतवर्ष में उनके एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अनुराग सागर से अत्यल्पजन ही परिचित हैं।

स्व. रामदास गौड़ ने अपनी पुस्तक हिन्दुत्व (पृ. 734) में 71 पुस्तकों की एक लम्बी सूची दी है। यहाँ उन्होंन अमर मूल के बाद **अनुराग सागर** का कथन किया है।

हिन्दुत्व का प्रथम प्रकाशन लगभग 74 वर्ष पूर्व स्व. बाबू शिव प्रसाद गुप्त जी द्वारा किया गया। तदनन्तर 1993 में ज्ञानमण्डल वाराणसी द्वारा इसका प्रकाशन हुआ।

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों ने इसी आधार पर अनुराग सागर के अस्तित्व को स्वीकार किया है। प्रो. रामकुमार वर्मा कृत 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में खोज की गई रिपोर्टों के आधार पर 61 पुस्तकों की सूची का कथन द्विवेदी जी ने किया है। गौड़ जी की सूची में निर्भयज्ञान, हिंडोला और आलिफनामा (एक जगह आरिफ नामा) ये दो–दो बार आये हैं इस प्रकार उनकी सूची में वस्तुतः 68 ही ग्रन्थ हैं। दोनों सूचियों के सामान्य नाम ये हैं – अठपहरा, **अनुराग सागर**, अमरमूल.....आदि। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रो. रामकुमार वर्मा की खोज रिपोर्टों का विवरण निम्नवत् प्रस्तुत किया है।

प्रो. रामकुमार वर्मा ने इन पुस्तकों में किये गये प्रक्षेपों का एक मनोरंजक लेखा दिया है। सन् 1906–9 की खोज रिपोर्ट में अनुराग सागर की एक प्रति पाई गई थी, जो सन् 1962 की लिखी थी। इसमें पद्यों की संख्या 1590 थी। पर सन् 1906–11 में इसी पुस्तक की इससे 16 वर्ष पुरानी एक और प्रति मिली। इस पुरानी प्रति में पद्यों की संख्या 1504 थी अर्थात् 16 वर्ष के अल्पकाल में अनुराग सागर में 86 पद्यों की वृद्धि हो गई।[8]

द्विवेदी जी के अनुसार कबीर पंथी कबीरदास के स्वयं वेद के चार भेद बताते हैं – 1. कूटवाणी, 2. टकसार, 3. मूल ज्ञान 4. बीजक वाणी। इनमें कूटवाणी को महात्मा धर्मदास ने प्रचारित किया था। बाकी के बारे में कहा जाता है कि उन्हें क्रमशः कर्नाटक के चतुर्भुज दास, दरभंगा के राय बंकेजी और शामल्ला द्वीप और मानपुर के हीरामीराँस जी प्रचारित करेंगे सो इन अपार वाणियों का पार पाना कठिन है और उनकी नित्य स्फीयमान काया का लेखा–जोखा भी दुष्कर है पर इतना निशिचित है कि बीजक के बाहर भी कबीरदास की कुछ वाणियाँ जरूर रही होंगी।[9]

अनुराग सागर में इन चार गुरुओं में धर्मदास, चतुर्भुजदास, बंकेजी तथा हीरामीराँस जी के स्थान पर सहतेजी का नाम कबीर साहब ने इस प्रकार लिया है–

चतुर्भुज बंकेज सहतेज और चौथे तुम अहौ।
चार गुरु कडिहार जग के, वचन यह निश्चय गहौ।[10]

डा. हजारी द्विवेदी जी का यह कथन पूर्णतः सत्य है कि बीजक के अतिरिक्त कबीर साहब के अनेक ग्रन्थ हैं। वस्तुतः अनुराग सागर भी इनमें से एक है।

मैंने अपनी पुस्तक 'चेतना के त्रिविध आयाम' में लिखा है कि जब मैं जोगिया गाँव में सन्त तुलसी साहब की रचनाओं को हुकुम सिंह के घर से पता कर रही थी तो मुझे वहाँ हुकुम सिंह (एक ग्रामीण जिसके यहाँ सन्त तुलसी साहब का हस्तलिखित साहित्य है) ने बताया कि सन्त तुलसी साहब ने अनुराग सागर की भी रचना की थी। इसका कारण हो सकता है – शेख तकी आदि के वृत्तान्त। अनुराग सागर में शाह सिकन्दर के दरबार में शेख तकी अपनी प्रतिष्ठा का दुरुपयोग करता हुआ सिकन्दर के सामने कबीर साहब को जंजीरों से बाँधकर मरवाने आदि अनेक प्रकार के कष्ट देने को शाह को प्रेरित करता है। शेख तकी का वर्णन घट रामायन में भी है।

घट रामायन के शेख तकी के आधार पर ही सम्भवतः कुछ लोग अनुराग सागर को सन्त तुलसी साहब की कृति मानते हैं किन्तु कबीर साहब का स्थिति काल – पन्द्रह–सोलहवीं शताब्दी तथा सन्त तुलसी साहब का स्थिति काल 17–18वीं शताब्दी माना जाता हैं। शेख तकी के स्थिति काल को इतने दीर्घकाल तक मानना सम्भव नहीं है सम्भवतः ये कोई अन्य शेख तकी हैं।

यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि कबीरदास ने **मसि कागद छूओ नहीं** था, इनके समस्त उपदेश मौखिक ही हुआ करते थे और शिष्यों ने ही उन्हें लिखा होगा वस्तुतः भारत में गुरु शिष्य परम्परा रही है। सन्त तुलसी साहब के विषय में भी यह कहा जाता है कि जब वे दोपहर को भोजन कर लेते थे तो वे अपनी शिष्य मण्डली के मध्य छन्द बोलते जाते थे और उनके कई शिष्य थे जो लिखते थे इसीलिए उनके ग्रन्थों की प्रतियाँ हाथरस समाधि के अतिरिक्त जोगिया गाँव में भी हैं। सन्त कबीर साहब के विषय में भी यही सत्य है। अनुराग सागर के अतिरिक्त इनके ज्ञान सागर, आदि अन्य ग्रन्थ भी है जिनमें कुछ वृत्तान्त एक जैसे ही हैं।

संत कबीर साहब कृत अनुराग सागर की प्रामाणिकता हेतु कुछ अन्य प्रमाण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं यथा – प्रचलित दन्त कथा के आधार पर कबीर साहब की माता एक विधवा ब्राह्मणी थी। स्वामी रामानन्द के पास उनका एक भक्त अपनी विधवा पुत्री को आशीर्वादार्थ साथ लेकर पहुँचा तब स्वामी रामानन्द ने उसे पुत्रवती

होने का आशीर्वचन किया। स्वामी जी के आशीर्वचन से प्राप्त पुत्र को विधवा ब्राह्मणी ने लोक–लज्जा वश 'लहरताल' में प्रवाहित कर दिया। संततिहीन दम्पति नीरू (नूरुद्दीन) तथा उसकी पत्नी नीमा लहरताल में उस बालक को प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने ही इनका पालन–पोषण किया।

उपर्युक्त किंवदन्ती के अनुसार नीरू–नीमा दम्पति द्वारा इनका पालन–पोषण करने का वृत्तान्त मात्र किंवदन्ती नहीं प्रत्युत् सत्य घटना है। यह घटना तथा ब्राह्मणी की घटना अन्य रूप में है जो अनुराग सागर में इस प्रकार है –

ब्राह्मणी वृतान्त : ब्राह्मणी वृतान्त को भक्त सुपच की घटना से प्रारम्भ करना उचित है। काशी में सुपच या सुदर्शन नामक एक भक्त था। कबीर साहब ने उसे नामदान किया तथा शब्द – श्रवण कराया। जब सुपच ने कबीर साहब द्वारा बताई गई विधि के अनुसार अभ्यास किया तो आत्मानन्द प्राप्त किया। सुपच के माता–पिता; पुत्र की भक्ति से तो प्रसन्न रहते थे किन्तु स्वयं भक्ति मार्ग की ओर नहीं खिंच रहे थे अतः वे कबीर साहब से नामदान के अधिकारी न हो सके।

कबीर साहब यहाँ द्वापर युग की एक घटना का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि द्वापर युग में महाभारत युद्ध में अपने बन्धु–बान्धवों के विनाश से जब युधिष्ठिर दुःखी होने लगे तब श्रीकृष्ण ने उनसे अश्वमेघ यज्ञ करने को कहा। यज्ञ में ऋषि–मुनि विप्रादि सभी ने भोजन किया। इच्छानुसार सभी को दान भी दिया गया। यज्ञ पूर्ण होने पर जो घंटा आकाश में बजता है, वह नहीं बजा। अतः अश्वमेध यज्ञ पूर्ण नहीं माना गया। सभी लोग श्रीकृष्ण के पास पहुँचे तब उन्होंने कहा कि जब तक निम्न जाति का सुपच भक्त ग्रास ग्रहण नहीं करेगा, यज्ञीय घंटा आकाश में सुनाई नहीं देगा। जैसे ही सुपच भक्त ने ग्रास उठाकर ग्रहण किया, आकाश में घंटा बजने लगा।

करिके कृपा कहो युद राजा। कारण कौन घण्ट नहिं बाजा।
कृष्ण अस कारण तासु बताया। साधू कोइ न भोजन पाया।।
चकित भै तब पाण्डव कहेऊ। कोटिन साधु भोजन लहेऊ।।
अब कहँ साधु पाइय नाथा। तिनते तब बोले युदनाथा।।
सुपच सुदर्शन को ले आवो। आदर मान समेत जिमावो।।

सोई साधु और नहिं कोई। पूरन यज्ञ जाहिते होई।।
कृष्ण आज्ञा जब अस पयऊ। पाण्डव ताके ढिंग गयऊ।।
सुपच सुदर्शन को ले आये। विनय प्रीति से ताहिं जेवांये।।
भूप भवन भोजन कर जबहीं। बजा आकाश में घण्टा तबहीं।।
सुपच भक्त जब ग्रास उठावा। बाजो घंट नाम पर भावा।।[11]

इसके बाद कबीर साहब; धर्मदास से सुपच के माता–पिता के विषय में कहते हैं कि भक्त सुपच ने तो मुझसे नामदान लिया था किन्तु उनके माता–पिता ने नहीं अतः वह मुझसे अपने माता–पिता के नामदान हेतु प्रार्थना करने लगे –

कहे सुपच सतगुरु सुन लीजै। हमरे मात पिता गति दीजै।
बन्दी छोड़ करो प्रभु जाई। यम के देश बहुत दुःख पाई।।
मैं बहु भांति पिता समुझावा। मातु पिता परतीत न पावा।।[12]

भक्त सुपच की भक्ति को कबीर साहब ने स्वीकार किया और द्वापर युग के पश्चात् कलियुगमें कबीर साहब के रूप में अवतरित हुए तथा जम्बुद्वीप में प्रवेश किया जहाँ सन्त सुदर्शन के माता–पिता लक्ष्मी तथा नरहर नाम से प्रसिद्ध थे। सन्त सुदर्शन की भक्ति के प्रताप से उसके माता–पिता ने एक विप्र परिवार में जन्म लिया। इस **प्रथम जन्म** में पिता का नाम कुलपति तथा माता का नाम महेश्वरी था।

सन्त सुदर्शन केर प्रतापा। मानुष देह विप्र के छापा।
दोनों जन्म होय तब लीन्हा। पुनिविधि मिलै ताहि कहँ दीन्हा।।
कुलपति नाम विप्रकर कहिया। नारिनाम महेसरि रहिया।[13]

इस जन्म में उनके कोई संतति नहीं थी अतः महेश्वरी ब्राह्मणी, पुत्र–प्राप्ति की इच्छा से सूर्य की पूजा करती थी तथा प्रतिदिन प्रातःकाल नदी में जाकर स्नान करती थी और बाद में दोनों हाथों से आँचल पकड़कर परमात्मा से पुत्र–प्राप्ति हेतु याचना करती थी।

बहुत अधीन पुत्र हित नारी। करि अस्नान सूर्य व्रतधारी।
अंचल लै विनवै कर जोरी। रुदन करै चित सुत कह दौरी।।[14]

कबीर साहब धर्मदास से कहते हैं कि तत्क्षण वह एक छोटे बालक का रूप धारण करके उनके आँचल में आ गए। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और अपने घर ले गई।

तत्क्षण हम अंचल पर आवा। हमकहँ देख नारि हरषावा।।

बाल रूप धरि भेंट्यो वोही। विप्र नारि गृह लै गई मोही।।[15]

पुत्र प्राप्ति को ब्राह्मणी सूर्यव्रत का फल समझती थी। बहुत समय तक विप्रदम्पति ने उनकी सेवा की। विप्रदम्पति अत्यन्त दरिद्र थे अतः कबीर साहब ने सर्वप्रथम उनकी दरिद्रता को दूर करने का उपाय किया।

प्रथमहि दरिद्रता इनकर टारों। पुनि भक्ति–मुक्ति कर वचन उचारों।

जब हम पलना झटक झकोरा। मिलत सुवर्ण ताहि इक तोरा।।

नितप्रति सोन मिलै इक तोला। ताते भये वह सुखी अमोला।।[16]

जब वे उन्हें पालने में झुलाते थे और सोए हुए को उठाते थे तो एक तोला सोना प्रतिदिन शिरो भाग में वस्त्र के नीचे रखा हुआ उन्हें प्राप्त होता था। प्रतिदिन एक तोला सोना मिलने से वे धनवान तो हो गये किन्तु उनके हृदय में भक्ति, नामस्मरण और शब्द सब बिसरा जा रहा था। वे उस बालक के स्वरूप–वैभव और दिव्यता को समझ नहीं पा रहे थे। अतः कबीर साहब जो उस दम्पत्ति की मुक्ति हेतु आये थे, उन्होंने स्वयं को गुप्त कर लिया तथा उस दम्पत्ति का जन्म भी व्यर्थ गया।

नित प्रति सोन मिलै इक तोला। ताते भयै वह सुखी अमोला।

पुनि हम सत्य शब्द गोहराई। बहुप्रकार से उनहिं समुझाई।।

ता हृदये नहिं शब्द समायी। बालक ज्ञान प्रतीत न आई।।

ताहि देह चीन्हेसि नहिं मोहीं। भयोगुप्त तहँ तन तज वोही।।[17]

सुपच (सुदर्शन) के माता–पिता का **दूसरा जन्म** चन्दनवारा (अवध) में हुआ। पिता का नाम **चन्दन साहु** तथा माता का नाम **ऊदा** हुआ। चन्दनवारे में भी कबीर एक सरोवर में कमल पत्र पर बालक के रूप में आठों प्रहर विराजमान रहे। एक दिन ऊदा स्नान करने आई और बालक (कबीर) के सुन्दर रूप को देखकर आकर्षित हो गई और उन्हें अपने घर ले गईं तथा पति चन्दन साहु से सारी कथा कह दी।

पुनि दोनों भये अंशु मिलाऊ। रहहि नगर चन्दवारे नाऊ।

ऊदा नाम नारी कहँ भयऊ। पुरुषनाम चन्दन धरि गयऊ।

परसोतमते हम चलि आये। तब चन्दवारा जाइ पगटाये।

बालक रूप कीन्ह तेहि ठामा। कीन्हेउ ताल माहि विश्रामा।

कमल–पत्र पर आसन लाई। आठ पहर हम तहाँ रहाई।

पीछे ऊदा अस्नानहि आयी। सुन्दर बालक देखि लुभाई।

दरश दियो देहि शिशुतन धारी। ले गई बालक निजघर नारी।।[18]

पति चन्दनसाहु ने उसे फटकार लगाई और कहा – मूर्ख स्त्री तुरन्त जाकर इस बालक को वहीं डाल कर आओ; जहाँ से इसे लेकर आई हो अन्यथा जाति कुटुम्ब के लोग हँसेंगे।

कह चन्दनते मूरख नारी। वेगि जाहु दै बालक डारी।

जाति कुटुम्ब हँसिहैं सब लोगा। हँसत लोग उपजै तन सोगा।।[19]

पति की आज्ञानुसार पत्नी ऊदा अपनी सेविका के साथ सरोवर तक आई और बालक को जल में छोड़ दिया और कबीर साहब गुप्त हो गये। दोनों विलाप करने लगी।

चल चेरी बालक कहँ लीन्हा। जलमहँ डारन ताहि चित दीन्हा।

चलि भइ मोहि पवांरन जबही। अन्तरधान मयो मैं तब ही।।

भयउ गुप्त तेहि करसे भाई। रुदन करै दोनों बिखलाई।।

बिकल होय मन ढूँढत डोलें। मुग्ध ज्ञान कुछ मुखनहि बोलें।[20]

सुपच (सुदर्शन) के माता–पिता **तीसरे जन्म** में **नीरू–नीमा** हुए और काशी नगर में रहने लगे। नीरू अपनी पत्नी नीमा की गौने की विदा ज्येष्ठ वट सावित्री के दिन कराके ला रहा था।

यह विधि बहुत दिवस चलि गयऊ। तजि तन जन्म बहुरि तिन पयऊ।

मानुष तन जुल्हा कुल दीन्हा। दोउ संयोग बहुरि विधि कीन्हा।

काशी नगर रहे पुनि सोई। नीरू नाम जुलाहा होई।

नारि गवन लाये मग सोई। जेठ मास बरसाइत होई।।[21]

(.यहाँ 'वरसाइत' पद पर ध्यान देना आवश्यक है। वरसाइत 'वट सावित्री' का अपभ्रंश है। यह वट सावित्री व्रत ज्येष्ठ शुद्ध पूर्णमासी को होता है। इसी दिन कबीर साहब नीमा और नीरू को मिले थे, इस कारण, कबीर पंथियों में **'वरसाइत'** महातम पन्थ की कथा प्रचलित है और उस दिन कबीर पंथी बहुत उत्सव मनाते है।)[22]

नीरू–नीमा; पूरीयन पनवाड़े के पास से जा रहे थे। कबीर साहब एक शिशु का रूप धारण कर वहाँ लेट गये और बालोचित क्रीडाएं करने लगे। नीमा अपने पति नीरू से आज्ञा प्राप्त कर सरोवर के पास मुखप्रक्षालन हेतु जाती है और वहाँ विद्यमान शिशु की क्रीडाओं से आकर्षित होकर उसे उठा लेती है। जिस प्रकार सूर्य को देखकर फूल खिल जाता है और दरिद्र को चलते हुए कहीं धन मिल जाता है तो वह उसे उठाकर अत्यन्त प्रसन्न होता है उसी प्रकार नीमा उस बालक को उठाकर बहुत प्रसन्न हुई।

नारि लिवाय आय मगमाहीं। जल अचबन गहबनिताही।
ताल नाहिं पुरइन पनवारा। शिशु होय मैं तहँ पगु धारा।।
तहां जस बालकै रहुँ पौढ़ाई। करौं कुतूहल बाल स्वभाई।
नीमा दृष्टि परी तिहि ठाऊ। देखत दरश भयो अति चाऊ।
जिमि रवि दरश पदुम बिगसाना। धायगयो धन रंक समाना।।[23]

नीमा उस शिशु को पति नीरू के पास ले गई। शिशु (कबीर) को देखकर नीरु क्रोधित हुआ और क्रोधपूर्वक कहने लगा कि इसे जहाँ से लाई हो, वहीं वापस रख कर आ। नीरू अपनी पत्नी नीमा को जब प्रताड़ित करने लगा तो शिशु (कबीर) कहने लगे –

सुनहु वचन हमारे नीमा, तोहि कहु समझायके।
प्रीत पिछली कारणे तुहि, दरस दीन्हो आयके।।
आपने गृह मोहि लैचलु, चीन्हके जो गुरु करो।
देऊँ नाम दृढ़ाय तो कहँ, फन्द यम के नापरो।।[24]

यह सुनकर नीरू का नीमा पर त्रास कम हो गया और वह बालक कबीर को काशी में अपने घर ले गई।

सुनत वचन अस नारि, नीरू त्रास न राखेउ।
लै गइ गेह मँझार, काशि नगर तब पहुँचेउ।।[25]

कबीर साहब वहाँ बहुत समय तक रहे किन्तु बालक समझकर किसी ने उनके 'शब्द स्वरुप' पर ध्यान नहीं दिया।

दिवस अनेक रहे तेहि ठाईं। कैसहु तेहि परतीत न आई।।

बहुत दिवस तेहि भवन रहावा। बालक जान न शब्द समावा।[26]

सुपच सुदर्शन के माता–पिता का चौथे जन्म में मथुरा में प्रकट होकर सत्य लोक जाना –

समयानुसार जुलाहा दम्पति मृत्यु को प्राप्त हुए और **चतुर्थ जन्म** में मथुरा में जन्म लिया।

जुलहा की तब अवध सिरानी। मथुरा देह धरी तिन आनी।

हम तहँ जाय दरश तिन दीन्हा। शब्द हमारा मानसों लीन्हा।।

रतना भक्ति करे चितलाई। नारि–पुरुष परवाना पाई।।

ता कहँ दीन्हेउ लोक निवासा। अंकूरी पठये निज दासा।

पुरुष चरण भेटे उरलाई। शोभा देह हंसकर पाई।

देखत हंस पुरुष हरषाने। सुकृति अंश कही मनमाने।।[27]

इस प्रकार कबीर साहब ने संत–सुदर्शन के माता–पिता का चौथे जन्म में उद्धार कर सतलोक पहुँचा दिया और उनकी चेतना का परम चेतना में लय हो गया। अनुराग सागर में निजधाम या सतलोक जाने के लिये **'अंकूरी'** शब्द का कथन किया है जिसका अर्थ है संस्कार या गढ़त होना। ऐसे जीव जो नामदान के पश्चात् ऊर्ध्व लोक में जाने योग्य संस्कारों से युक्त हो गये हैं अथवा उनकी गढ़त हो गई है वे अंकूरी जीव है।

वस्तुतः कबीर साहब का विधवा ब्राह्मणी से जन्म लेने की कथा का यथार्थ रूप महेश्वरी तथा ऊदा ब्राह्मणी कथा में है। प्रथम तथा द्वितीय जन्मों में उनके माता–पिता धर्म, जाति और धन के चक्कर में यथार्थ से बहुत दूर हो गये अतः तीसरा जन्म जुलाहे नीरू–नीमा के रूप में हुआ। वहाँ भी कबीर साहब जल में शिशु रूप में प्रकट हुए। तीन जन्मों में कबीर साहब ने सरोवर में शिशु रूप में प्रकट हो अपने दरशन दिये। ये सभी तथ्य मात्र जनश्रुति या किंवन्दन्तियाँ नहीं है। ये यथार्थ हैं जिनका प्रमाण अनुराग सागर है।

सर्वानन्द कथा

अनुराग सागर की प्रामाणिकता का अन्य उदाहरण सर्वानन्द की कथा है। काशी में सर्वानन्द नामक एक परमज्ञानवान् विद्वान् था। उसे अपनी विद्वता पर बहुत गर्व था।

भल धर्मनि सुनहु अब सो कथा। गोष्टि भयी सर्वानन्द से यथा।
सर्वानन्द विप्र एक कह रहई। कोई न ज्ञाता तिन सम अहई।।
x x x x x x x x
बहु पण्डित सौ गोष्टि तिन्ह कीन्हा। ज्ञान जीति पोथी बहु लीन्हा।
काहु न जीते गये सर्व हारी। सर्वानन्द मन गर्व बहु भारी।।[28]

एक दिन सर्वानन्द ने अपनी माँ से कहा, हे माँ ! तुम्हें मेरा नाम सर्वानन्द नहीं बल्कि सर्वजीत रखना चाहिये था।

माता सौ तिन वचन उचारा। हो जननी बड़ भाग्य तुम्हारा।
हम अस पण्डित हैं सुत तोरा। काहू न जीतै गोष्टि सो मोरा।।
सर्वाजीत नाम मम धरहू। अजित तिलक सिर हमरे करहू।।[29]

माँ ने कहा यदि तुम कबीर को जीत लोगे तो मैं मान जाऊँगी कि तुम्हारा नाम सर्वजीत होना चाहिये था। अतः तुम शास्त्रार्थ हेतु कबीर के घर जाओ।

हो सुत एक पूँछौ तोहिपाहीं। कबीर जोलहहिं जीतेहु कि नाहीं।
x x x x x
जोलह जीति आवहु तुम जबहीं। सर्वाजित कहब तोहि तबही।
तवहीं तोहि सिरसारव टीका। बिनु जोलहिंजी जीते बुदिफीका।

सर्वानन्द शास्त्रार्थ हेतु काशी पहुँचे।

जब जननी बहुते धिरकारा। बढ्यो क्रोध भयो विकरारा।
कीन्ह प्रणाम चितवत अभिमाना। काशी कहँ पुनि कीन्ह पयाना।।[30]

सर्वानन्द बैल पर अपनी किताबें लादकर **कबीर–चौरा मठ** गया और दरवाजा खटखटाने पर पुत्री कमाली ने कहा –

कबीर का घर सिखर पर जहाँ सिहलही गैल।

पांउ न टिके पिपीलका पंडित लादै बैल।।

अर्थात् – हे पंडित जी ! कबीर का घर तो शिखर (चोटी) पर है जहाँ पर चींटी का पैर भी नहीं टिक सकता और तुम बैल पर किताबें लादकर लाए हो।

उसी समय वहाँ पर कबीर साहब आ गये। कबीर साहब से सर्वानन्द ने कहा कि मैं सर्वानन्द सबसे बड़ा विद्वान् हूँ। मैंने अपनी माँ से कह दिया था कि सर्वानन्द के स्थान पर मेरा नाम सर्वजीत होना चाहिये था। तब माँ ने कहा कि पहले तुम कबीर को जीत कर आओ। कबीर साहब ने उत्तर दिया कि बात तो हार–जीत की ही है न, मैं पहले ही हार मान लेता हूँ। सर्वानन्द ने कहा कि आपने यदि अपनी हार मान ली हैं तो आप मुझे लिखित में दे दीजिये। कबीर साहब ने लिखकर दे दिया कि कबीर हार गये और पंडित सर्वानन्द जीत गये और नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिये ताकि उस पर प्रमाण रहे। सर्वानन्द उसको लेकर माँ के पास गये। माँ ने उसको पढ़ने को कहा। जब उसने पढ़ा तो लिखा था कि कबीर साहब जीत गये और सर्वानन्द हार गया। वह हतप्रभ होकर पुनः कबीर साहब के पास गया और कहने लगा कि आपने तो मुझे उल्टा लिख कर दिया था। कबीर साहब ने उत्तर दिया कि मैं तो अनपढ़ हूँ। आप स्वयं ही लिख लें। सर्वानन्द ने स्वयं लिखकर नीचे कबीर साहब के हस्ताक्षर करा लिये। घर आकर पढ़ा तो फिर वही लिखा था कि कबीर साहब जीत गये तथा पंडित सर्वानन्द हार गया। सर्वानन्द अपनी सारी पुस्तकों को छोड़कर कबीर साहब की शरण में पहुँच गया। कबीर साहब; धर्मदास से कहने लगे कि सर्वानन्द की पराजय को देखकर गुरु रामानन्द ने मुझे विधि–विधानानुसार तिलक लगाकर अपना सबसे बड़ा शिष्य घोषित कर दिया।

सरबानन्द विपर इक आवा। ताहि जीत गुरु शिष्य करावा।[31]

तब गुरु मोको तिलक जो दीन्हा। सब पर शिष्य मोहे गुरु कीन्हा।[32]

कबीर चौरा मठ में आज भी ग्रन्थों से लदे बैलों की मूर्ति तथा **किताबी दम्भ हुआ यहीं पानी–पानी** नाम से यह कथा लिखी है जो इस प्रकार है –

किताबी दम्भ हुआ यहीं पानी–पानी।

यही वह ऐतिहासिक कुआँ है जिसके पानी में कबीर साहब की साधना का अमृत रस घुला हुआ है। दक्षिण भारत के दिग्विजयी विद्वान् पं. सर्वानन्द को पहली

बार इसी कुएँ पर अपनी प्यास बुझाने के क्रम में कमाली जैसी आम–सी दिखती लड़की के बोलों के जरिये कबीर साहब की महिमा का आभास हुआ था।

हुआ यह कि कबीर साहब से शास्त्रार्थ करने की गरज से सर्वानन्द यहाँ आये थे। विद्वान् वे इतने बड़े थे कि उन्हें शास्त्रार्थ में कोई तब तक हरा नहीं पाया था और जहाँ भी वे जाते शास्त्रों–ग्रन्थों से लदे बैल भी उनके साथ जाते। दूर से चलकर आये थे, इसलिये उन्हें और उनके बैलों को तेज प्यास लगी हुई थी। यहाँ कुआँ देखा तो रुक गये। उस समय कमाली यहाँ पानी भर रही थी। उन्होंने पानी पिलाने की याचना की और कमाली ने उन्हें प्रेमपूर्वक पानी पिलाया भी। प्यास बुझ जाने पर सर्वानन्द को अपना मकसद याद आया और उन्होंने कमाली से ही कबीर साहब के घर का पता पूछा। कमाली ने बताया तो, लेकिन बहुत गहरे और दार्शनिक अन्दाज में कबीर साहब के ही दोहे के जरिये –

कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहिली गैल।।

पांव न टिकै पिपील का, पंडित लादे बैल।।

आम–सी दिखती कमाली से ऐसे वचन सुनकर सर्वानन्द दंग रह गये। उनकी चेतना पर कबीर साहब की महिमा की यह पहली छाप थी।

जल्दी ही सर्वानन्द ने शास्त्रार्थ के लिए कबीर साहब को जा घेरा, लेकिन वे राजी न हुए। वे **'कागज लेखी'** के उस पंडित को **'आँखिन–देखी'** की अनुभूति कराना चाहते थे। पं. सर्वानन्द के बार–बार उकसाने पर भी वे तैयार न हुए। उन्होंने शास्त्रार्थ नहीं किया और विनम्रतापूर्वक अपनी हार स्वीकार कर ली। लेकिन कबीर साहब द्वारा मंजूर इस हार को भी पं. सर्वानन्द कागज पर दर्ज करा लेना चाहते थे, ताकि सनद रहे और भविष्य में काम आये। सो उन्होंने कागज पर लिखवाकर ले लिया कि **'कबीर हारा और सर्वानन्द जीता'**।

लेकिन घर लौटकर सर्वानन्द ने जब अपनी माँ को अपनी इस जीत का पट्टा दिखाना चाहा तो वहाँ उन्होंने उस कागज में उल्टा ही लिखा पाया – **'कबीर जीता और सर्वानन्द हारा'**। इस चमत्कार ने सर्वानन्द की आँखें ही खोल दीं और कागजी विद्वता का उनका दम्भ चूर–चूर हो गया। वे उल्टे पाँव भागे–भागे फिर काशी आये। आकर इसी कबीर चौरा परिसर में कबीर साहब के चरणों में लोट गये और उन्हीं के

शिष्य हो गये। **'आँखिन देखी'** के यहाँ के सच के सामने **'कागज लेखी'** की उनकी विद्वता बेमानी हो गयी थी। किताबें उनके लिए इतनी व्यर्थ हो गयीं कि महापंडित होते हुए भी वे जीवन में फिर किसी किताब की ओर नहीं मुड़े। यही पं. सर्वानन्द आगे चलकर आचार्य सुरति गोपाल साहब हुए। कबीर साहब के परिनिर्वाण के बाद उन्हें ही इस कबीर चौरामठ मूल गादी का आचार्य – महंत पीठाधीश्वर नियुक्त किया गया और उन्हीं के हाथों में सोंपी गयी कबीरपंथ की बागडोर।[33]

इन प्रमाणों के अतिरिक्त कबीर साहब ने अनुराग सागर के **चितभंग दूत का पंथ** प्रसंग में अपनी **बीजक** कृति का भी नाम लिया है जो इस प्रकार है –

बीजक ज्ञान दूत जो थापे। जस गूलर कीडा घट व्यापे।
आपा थापी भला न होई। आपा थापि गये जिव रोई।।[34]

अनुराग सागर के जगन्नाथ पुरी मन्दिर की स्थापना के प्रसंग में **चौरा** शब्द का प्रयोग हुआ है। कबीर साहब समुद्र के तट पर चौरा (खुला स्थान या खुले स्थान में बनी झोपड़ी आदि) बनाकर बैठ गये।

आसन उदधि तीर हम कीन्हा। काहू जीव न मोही चीन्हा।।
पीछे उदधि तीर हम आई। चौरा तहँ बनायउ जाई।।[35]

तथा –

चौरा करि व्यवहार, भ्रम विमोचन ज्ञान दृढ़।
तहँते कियो पसार, धर्मदास सुनु कानदे।।[36]

सम्प्रति बनारस के कबीरमठ या मन्दिर का नाम भी कबीर चौरा है।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि अनुराग सागर संत कबीर की ही रचना है। अनुराग सागर के ही उपर्युक्त विविध वृत्तान्त जैसे विधवा ब्राह्मणी से जन्म लेना तथा नीरू–नीमादि वृत्तान्तों को लोग जनश्रुति कहने लगे जबकि ये अनुराग सागर में उल्लिखित हैं। यही नहीं कबीर साहब ने अपनी इस रचना में अपने चार नामों यथा – सत्यसुकृत, मुनीन्द्र, करुणामय और कबीर का भी उल्लेख किया है।

अस्तु ! ब्राह्मणी, नीरू–नीमा आदि वृत्तान्तों, सर्वानन्द–आख्यान जो कबीर चौरा मठ बनारस में आज भी लिखित रूप में विद्यमान है तथा धर्मदास, बंकेजी, सहतेजी

तथा चतुर्भुजदास इन चार गुरुओं के नामोल्लेख, बीजक तथा चौरा के कथन आदि प्रमाणों से पुष्ट होता है कि **अनुराग सागर** संत कबीर साहब की ही रचना है।

(ख) अनुराग सागर का प्रतिपाद्य

अनुराग सागर का प्रारम्भ सद्गुरु स्तुति से है। मंगलाचरण हरगीतिका छन्द में है।

प्रथम वन्दों सतिगुरु चरण जिन, अगम गम्य लखाइया।।
गुरु ज्ञान दीप प्रकाश करि पट, खोलि दरश दिखाइया।।
जिहि कारणे सिद्धयापचेसो, गुरु कृपा ते पाइया।।
अकह मूरति अमिय सूरति, ताहि जाय समाइया।।

मंगलाचरण के पश्चात् 'अनुराग सागर' के अधिकारी तथा अनुरागी भक्त ही निर्वाण का अधिकारी होता है, इस कथन के पश्चात् अनुरागी के लक्षणों को मृग, पतंगा एवं सती–स्त्री के उदाहरण के द्वारा समझाया गया है। इसके पश्चात् तत्त्वानुरागी के लक्षण अधिकारी की दुर्लभता आदि दिये गये हैं। इसके बाद निम्न विषय वर्णित है जैसे – मृतक भाव, इन्द्रिय वशीकरण, अनलपक्षी सम साधु वृत्ति तथा ऐसे साधु को (गुरु द्वारा) अविचल धाम या परम चेतनधाम की प्राप्ति, नाम – माहात्म्य, सार शब्द (अनहद धुन या शब्द चेतना), धर्मदास का आनन्दोद्गार, सृष्टि उत्पत्ति, सोलह सुत का प्रकटीकरण, निरंजन की तपस्या और मानसरोवर तथा शून्य स्थल की प्राप्ति, निरंजन को सृष्टि रचना का साज मिलने का वृत्तान्त, आद्या की उत्पत्ति, आद्या और निरंजन के संयोग से सृष्टि रचना, तीन सुत की उत्पत्ति के बाद निरंजन का गुप्त होना, सिंधुमंथन आदि।

इसमें कबीर साहब के; चार युगों – सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग में चार नामों सत्यसुकृत, मुनीन्द्र, करुणामय और कबीर रूपों में प्रकट (अवतरित) होने का वर्णन है। इसके अतिरिक्त जगन्नाथपुरी की स्थापना, चार गुरुओं की स्थापना का वृत्तान्त, काल के द्वादश पंथ, बयालीसवंश माहात्म्य आदि वर्णित हैं। कबीर साहब जीवों की मुक्ति के लिये चौका, परवाना (नामदान) तथा आरती कराते थे। ग्रन्थ के अन्त में हंस लक्षण, ज्ञानी–लक्षण तथा परमार्थी सन्त के लक्षण आदि वर्णित हैं।

(ग) अनुरागसागर का अधिकारी

अनुराग सागर ग्रन्थ के आरम्भ में सद्गुरु वन्दना के पश्चात् अनुरागी की दशा वर्णित है। अनुराग सागर के वचन हीरे के सदृश हैं। जिस प्रकार जौहरी ही केवल हीरे की परख कर सकता है उसी प्रकार अनुराग सागर के गूढ़ रहस्यों को भी कोई अधिकारी सन्त–महात्मा परख सकता है।

कोई बूझई जन जौहरी जो, शब्द की पारख करै।।
चितलाय सुनहिं सिखावनो, हितजा के हिरदय धरै।
तम मोह मोसम ज्ञान रवि, जब प्रगट हो तब सूझई।।
कहत हूँ अनुराग सागर, संत कोई बूझई।।

बिना अनुराग के लक्ष्य प्राप्ति नहीं हो सकती।

सोरठा कोई इक सन्त सुजान, जो मम शब्द बिचारई।।
पावै पद निर्बान, बसतु जासु अनुराग उर।।

शिष्य धर्मदास के मन में यह जिज्ञासा होती है कि अनुरागी की अवस्था कैसी रहती है, कौन–सा जीव अनुरागी होता है तथा उसका आचरण कैसा होता है अतः वह अपनी उपर्युक्त जिज्ञासा शमन हेतु कबीर साहब से प्रार्थना करते हैं।

हे सतगुरु विनवौं कर जोरी। यह संशय मेटो प्रभु मेरी।।
जाके चित अनुराग समाना। ताकर कहो कवन सहिदाना।।
अनुरागी कैसे लखि परई। बिन अनुराग जीव नहिं तरई।।
सो अनुराग प्रभु मोहिं बताऊ। देई दृष्टान्त भले समझाऊ।।

कबीर साहब धर्मदास की जिज्ञासा का शमन करते हुए मृग, शलभ तथा सती स्त्री के उद्धरणों से अनुरागी की दशा को इस प्रकार समझाते है कि जिस प्रकार हिरण आखेटक के नाद को सुनकर उसी के समीप दौड़कर जाता है और आखेटक की क्रोड में निश्चिन्त भाव से, मृत्यु के भय से रहित होकर अपना शीश रख देता है यही हाल अनुरागी का होता है।

जैसे मृगा नाद सुनि धावै। मगन होय ब्याधा ढिंग आवै।।
चित कछु संक न आवै ताही। देत सीस सो नाहि डराही।।
सुनि सुनि नाद सीस तिन दीन्हा। ऐसे अनुरागी कहै चीन्हा।।

पतंगा जिस प्रकार दीपक की लौ में भस्म हो जाता है उसी प्रकार अनुरागी की स्थिति होती है। सन्त महात्माओं के प्रति अनुरागियों का सहज आकर्षण होता है।

औपतंग को जैसो भाऊ। ऐसे अनुराग उर आऊ।।

सती स्त्री जिस प्रकार किसी बन्धु–बान्धव की परवाह किये बिना मृत–पति के साथ चिता में भस्म हो जाती है, ऐसी ही स्थिति अनुरागी की होती है।

जरत नारि ज्यों भूतपति संगा। तनिको जरत न मोरत अंगा।

तजै सुगृह धन–धाम सुहेली। पिय विरहिन उठि चलै अकेली।।

अनुरागी जीव इस अनुराग सागर से बहुमूल्य मुक्तक निकाल लेते हैं। अनुरागी जीव सद्गुरु के नाम के साथ प्रेम करने लगते है। उन्हें कुलकुटुम्ब से मोह नहीं रहता है। उनके लिये जीवन–जन्म सब कुछ स्वप्नवत् होता है।

जिस प्रकार शूरवीर योद्धा युद्ध क्षेत्र से पीछे नहीं हटता उसी प्रकार जिसमें मृतक भाव होता है वह शूर जीव दुर्लभ अधिकारी होता है।

सोरठा कोइक, शूरजीव, जो ऐसी करनी करै।।

ताहि मिलिगो पीव, कहे, कबीर विचारिके।।

पुनः शिष्य धर्मदास के मन में मृतक भाव जानने की जिज्ञासा होती है और वे कबीर साहब से प्रार्थना करते हैं कि मैं मृतक–भाव को अपने अन्दर कैसे उत्पन्न करूँ। तब कबीर साहब भृंगी आदि का उदाहरण देकर इस बात को समझाते हैं कि जिस प्रकार भृंगी किसी दूसरे कीट के बच्चे को अधमरा करके उसे तीन बार आवाज देता है और यदि वह कीट उसकी आवाज या शब्द को सुन लेता है तो वह भी भृंगी ही बन जाता है।

कोई विरला ही जीव कीट की भाँति भृंगी की प्रथम, द्वितीय या तृतीय आवाज को सुनता है। सन्त मर्त्यलोक में आकर भृंगी की भाँति जीवों को मुक्त करने के लिए आवाज देते हैं।

मृतक होय के खोजहिं सन्ता। शब्द विचारि गहैं मगु अन्ता।।

जैसे भृंग कीट के पासा। कीट हिंगहि पुरुगम परगासा।।

शब्द घातकर महितिहि डारे। भृंगी शब्द कीट जो धारे।।

तब लैगौ भृंगी निज गेहा। स्वाती देह कीन्हो सम देहा।।

भृंगी शब्द कीट जो माना। वरण फेर आपन कर जाना।।

विरला कीट जो होय सुख दाई। प्रथम अवाज गहे चितलाई।।

कोई दूजे कोई तीजे मानै। तन मन रहित शब्द हित जानै।।

भृंगी शब्द कीट ना गहई। तौ पुनि कीट आसरे रहई।।

धर्मदास यह कीट को भेवा। यहि मति शिष्य गहे गुरु देवा।।[37]

सन्त पर भरोसा करने पर सन्त भी उस शिष्य को अपना (निज) रूप बना लेते हैं अर्थात् सन्त शिष्य को नाम दान कर; शब्द की कमाई करवाकर अपना बना लेते हैं अर्थात् उसे अपने गुण प्रदान करते है अतः जीव को कभी भी द्वैत भाव नहीं लाना चाहिये। शिष्य में समर्पण या मृतक भाव होना चाहिये। ऐसा करने पर शिष्य काग से हंस बन जाता हैं।

भृंगि मति दिढ़क गहे तो, करो निज सम ओहि हो।

दुतिया भाव न चित व्यापे, सो लहे जिव मोहि हो।।

गुरु शब्द निश्चय सत्यमाने, भृंगि मत तब पावई।।

तजि सकल आसा शब्द बासा, काग हंस कहावई।।[38]

इस प्रकार सतशब्द के ग्रहण से काग गति हंस गति में बदल जाती है और ऐसा जीव अमृत रूपी मुक्तक का पान करता है।

सोरठा तज कागे की चाल, सत्य शब्द गहि हंस हो।

मुकता चुगे रसाल, पुरुष पच्छ गुरु मग गवन।।[39]

जीव मृतक भाव के साथ स्वयं को गुरु को समर्पित करके चले तो वह शब्द रूपी गुरु के साथ मिलाप कर सकता है। जैसे चलनी मिट्टी, रेत आदि को नीचे फेंक देती है तथा उपयोगी वस्तु उसमें रह जाती है उसी प्रकार सन्त भी समर्पित जीवों को चुन लेते हैं। कबीर साहब पृथ्वी तथा ईख के दृष्टान्त द्वारा भी मृतक भाव को स्पष्ट करते हैं कि जैसे पृथ्वी पर कोई चाहे चन्दन फेंके या विष्ठा डाले या कृषि आदि कार्य करे वह किसी का विरोध नहीं करती।

जस पृथ्वी के गंजन होई। चित अनुमान गहे गुण सोई।।

कोई चन्दन कोई विष्ठा डारे। कोई कोई किरषी अनुसारे।।

गुण–औगुण तिन समकर जाना। महाविरोध अधिक सुख माना।।[40]

इसी प्रकार कृषक गन्ने से खांड तैयार करता है जिसमें गन्ने का रस निकालकर उसे तापकर गुड़ बनाया जाता है। खाँड से चीनी निर्मित होती है उस चीनी को भी तपाने से मिश्री और तब उस मिश्री से कन्द (कालपी मिश्री) निर्मित होती है।

जैसे ऊख किसान बनावे, रती रती कर देह कटावे।।
कोल्हू महँ पुनि आप पिरावे, पुनि कड़ाह में आप उँटावे।।
जिन तनु दाहे गुड़ तब होई, बहुरि ताव दे खांड विलोई।।
ताहू माहिं ताव पुनि दीन्हा, चीनी तवै कहावन लीन्हा।।
चीनी होय बहुरि तन जारा। ताते मिसरी ह्वै अनुसारा।।
मिसरीते जब कंद कहावा। कहे कबीर सबके मन भावा।[41]

अनुरागी शिष्य को भी इसी प्रकार कठिन तप कर मृतक भाव से रहते हुए सद्गुरुमय हो जाना चाहिये।

मृतक भाव तो किसी विरले सूरमा में ही होता है, कायर में नहीं।

मिरतक भाव है कठिन धर्मनि, लहे विरल शूर हो।।
कादर सुनतेहि तनमन दहै, पाछे न चितवत कूर हो।।[42]

वस्तुतः मृतक ही साधु है –

मृतक हो सो साधु, सो सतगुरु को पावई।।
मेटे सकल उपाध, तासु देव आसा करे।।[43]

साधु प्रवृत्ति का अनुरागी शिष्य ही 'अनुराग सागर' का अधिकारी है। कबीर साहब साधु का लक्षण इस प्रकार बताते है –

साधू मार्ग कठिन धर्मदासा। रहनी गहे सो साधु सुवासा।।
पाँचों इन्द्री सम करि राखे। नाम अमीरस निशिदिन चाखे।।[44]

साधु मार्ग अत्यन्त कठिन है। जिसका साधु आचरण है, वही सच्चा साधु है। साधु को अपनी पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये तथा सतगुरु नाम का अमृत पान दिन–रात करते रहना चाहिये।

सर्वप्रथम नेत्रेन्द्रिय पर नियन्त्रण करना चाहिये तथा सतगुरु के भव्य–दिव्य स्वरूप तक पहुँचाने वाले नाम का स्मरण करना चाहिए। सुन्दर तथा कुरूप दोनों वस्तुओं के प्रति सहज भाव रखते हुए सतगुरु के दर्शन का सुख इन आँखों से प्राप्त करना चाहिये।

इसी प्रकार श्रवणेन्द्रिय को भी शुभ–अशुभ अथवा मधुर और कटु वचन सुनने पर सहज रहना चाहिये अर्थात शिष्य को निन्दा और स्तुति दोनों अवस्थाओं में समभाव होकर व्यवहार करना चाहिऐ।

नासिका का विषय सुगन्ध है और जिह्वा का वास। दोनों को प्रत्येक अवस्था में सहज रखना चाहिये। काम इन्द्री सर्वाधिक दुष्ट और अपराधी है। कोई विरला ही इस कुटिल काम पर विजय प्राप्त कर सकता है। कामिनी स्त्री का रूप काल की खान है। गुरु–ज्ञान से ही इसको छोड़ा जा सकता है। जिस समय काम; जीव पर आक्रमण करे, उस समय सतगुरु के नाम का स्मरण करना चाहिये। सतगुरु के साथ जब प्रीति होने लगेगी तो काम, शक्तिहीन हो जायेगा।

काम–परमार्थ में सबसे बाधक तत्त्व है। सुर, मुनि, यक्ष, किन्नर आदि सभी इसके चक्र में फँस गये। काम लुटेरे से बचने का एकमात्र उपाय है – सतगुरु के ज्ञान रूपी दीपक से अपने अन्दर ज्योति के दर्शन करना। सतगुरु की दया से ही सम्भव, शब्द–विलास से काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकारादि चोर भाग जाते हैं।

सोरठा दीपक ज्ञान प्रकाश, भवन उजेरा करि रहो।।
सतगुरु शब्द विलास, भाज जोर अँजोरा जब।।[45]

गुरु कृपा से ही शिष्य साधु बन जाता है और साधु आचरण से उसमें संसार के प्रति अनासक्ति आदि विशिष्ट गुण आ जाते हैं। अनल या अलल पक्षी के दृष्टान्त से कबीर साहब इस प्रकार समझाते हैं –

गुरु कृपा सों साधु कहावै। अनल पच्छ ह्वै लोक सिधावै।।
धर्मदास यह परखो बानी। अनलपच्छ गम कहों बखानी।।[46]

अनल या अलल पक्षी आकाश में ही रहता है और नीचे नहीं आता। पवन–पान ही उसका प्राणाधार है। नर–मादा जब परस्पर एक–दूसरे को देखते हैं तब मादा अनल गर्भवती हो जाती है। उसका अंड निराधार होने के कारण नीचे आने लगता है और रास्ते में पक कर टूट जाता है। बच्चे को बाहर निकलते ही मार्ग में आँखे तथा

पंख मिल जाते हैं अर्थात उसे देखने की और उड़ने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। जब वह पृथिवी के समीप आता है तब उसे समझ आता है कि यह उसका देश नहीं है और वह पुनः ऊपर लौटने का प्रयास करता है। आकाश में अन्य अनल पक्षी उसे लेने आते हैं। अनल पक्षी के समान संसार में ऐसे जीव विरले ही होते हैं जो संसार को पराया समझ कर अपने घर अनामी देश में पहुँचने के लिए व्याकुल रहते हैं।

अनल पच्छ सम पच्छिन माहीं। अस विरले जिव नाम समीहीं।
यह विधि जो जिव चेतै भाई। मेटे काल सतलोक सिधाई।।[47]

अनुरागी अनलपक्षी के सदृश अपने को निरालंब समझे तथा एक मात्र सद्गुरु–नाम की आशा रखे। नित्य गुरु चरणों में लीन रहे तथा धन–धाम, पुत्र–पत्नी सभी को भूलकर गुरु के चरण–कमलों का दृढ़ता से ध्यान करे वही सच्चा शिष्य है।

निरालंब अलंब सतगुरु, एक आसा नाम की।
गुरु चरण लीन अधीन निशदिन, चाह नहिं धन धाम की।।
सुत नारि सकल विसारि विषया, चरण गुरु दृढ़ कै गहे।।[48]

वस्तुतः अनुराग–सागर का अधिकारी कोई विरला जीव हीं हो सकता है। अनुराग सागर के माहात्म्य और गूढ़ता को समझकर अधिकारी शिष्य में परमात्मा के प्रति प्रगाढ़ अनुराग या प्रेम उत्पन्न होगा। सद्गुरु के प्रति प्रेम एवं उनकी कृपा से उसके भवबन्धन कटेंगे और क्रमशः मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा। बिना अनुराग के शिष्य; अधिकारी नहीं हो सकता। सद्गुरु से प्रीति और प्रतीति के अभाव में उसके भवबन्धन नहीं कट सकते और अन्त में वह शिष्य अपने जीवन का लक्ष्य भी प्राप्त नहीं कर सकता। अतः अनुराग सागर के अधिकारी में सद्गुरु के प्रति अनुराग एवं मृतक भाव का होना आवश्यक है।

संदर्भ

1. अनुराग सागर, पृ. 108 पाद टिप्पणी के अनुसार
2. कबीर साहित्य की परख, पृ. 260 के आधार पर
3. कबीर ग्रन्थावली पद 270 – बाबू श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, संवत् 2025

4. कबीर ग्रन्थावली पद 346 – बाबू श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, संवत् 2025
5. कबीर – डा. हरि त्रिवेदी तथा डा. मण्डन त्रिवेदी, पृ. 11, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2001
6. अनुराग सागर, पृ. 80, पंक्ति 1–2
7. अनुराग सागर, पृ. 56, पंक्ति 19
8. कबीर – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 30
9. कबीर – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 33
10. अनुराग सागर, पृ. 113
11. अनुराग सागर. पृ. 96–97
12. अनुराग सागर, पृ. 106 पंक्ति 3–5
13. अनुराग सागर, पृ. 106, पंक्ति 16–18
14. अनुराग सागर, पृ. 106, पंक्ति 19–20
15. अनुराग सागर, पृ. 106, पंक्ति 21–22
16. अनुराग सागर, पृ. 107, पंक्ति 4–6
17. अनुराग सागर, पृ. 107, पंक्ति 6–9
18. अनुराग सागर, पृ. 107, पंक्ति 11–17
19. अनुराग सागर, पृ. 107, पंक्ति 21–22
20. अनुराग सागर, पृ. 108, पंक्ति 3–6
21. अनुराग सागर, पृ. 108, पंक्ति 9–10
22. अनुराग सागर, पृ. 108 पाद टिप्पणी
23. अनुराग सागर, पृ. 108, पंक्ति 11–15
24. अनुराग सागर, पृ. 109, छन्द 72
25. अनुराग सागर, पृ. 109, छन्द 76
26. अनुराग सागर, पृ. 109, पंक्ति 9–10
27. अनुराग सागर, पृ. 109, पंक्ति 14–19

28. बोध सागर, धर्मदास बोध प्रकाश, सर्वानन्द की कथा, पृ. 38
29. बोध सागर, धर्मदास बोध ज्ञान प्रकाश, सर्वानन्द की कथा, पृ. 38
30. बोध सागर, धर्मदास बोध प्रकाश, सर्वानन्द की कथा, पृ. 39

    नोटः सर्वानन्द की यह कथा अनुराग सागर की अन्य टीकाओं में भी है।
31. अनुराग सागर, भाग–3, सत्संग महाराज केहर सिंह, पृ.402, तरन तालन, अमृतसार, पंजाब
32. अनुराग सागर, भाग–3, सत्संग महाराज केहर सिंह, पृ.402–406, तरन तालन, अमृतसार, पंजाब
33. कबीर चौरामठ मूलगादी पीठ, बनारस
34. अनुराग सागर, पृ. 122, पंक्ति 5–6
35. अनुराग सागर, पृ. 102
36. अनुराग सागर, पृ. 104, सोरठा
37. अनुराग सागर, पृ. 6
38. अनुराग सागर, पृ. 7
39. अनुराग सागर, पृ. 7
40. अनुराग सागर, पृ. 7
41. अनुराग सागर, पृ. 7
42. अनुराग सागर, पृ. 8
43. अनुराग सागर, पृ. 8
44. अनुराग सागर, पृ. 8
45. अनुराग सागर, पृ. 9
46. अनुराग सागर, पृ. 9
47. अनुराग सागर, पृ. 10
48. अनुराग सागर, पृ. 10

चित्र

1. सद्गुरु कबीर मंदिर कबीरचौरा मठ आदि मूल गादी
2. पुस्तकों से लदा हुआ बैल
3. किताबी दम्भ हुआ यहीं पानी–पानी

सद्‌गुरु कबीर मंदिर कबीरचौरा मठ आदि मूल गादी

किताबी दम्भ हुआ यहीं पानी-पानी
यही वह ऐतिहासिक कुआँ है जिसके पानी में कबीर साहब की साधना का अमृत-रस घुला हुआ है। दक्षिण भारत के दिग्विजयी विद्वान पं. सर्वानन्द को पहली बार इसी कुएँ पर अपनी प्यास बुझाने के क्रम में कमाली-जैसी आम-सी दिखती लड़की के बोलों के जरिये कबीर साहब की महिमा का आभास हुआ था।
हुआ यह कि कबीर साहब से शास्त्रार्थ करने की गरज से सर्वानन्द यहाँ आये थे। विद्वान वे इतने बड़े थे कि उन्हें शास्त्रार्थ में कोई तब तक हरा नहीं पाया था और जहाँ भी वे जाते, शास्त्रों-ग्रंथों से लदे बैल भी उनके साथ जाते। दूर से चलकर आये थे, इसलिए उन्हें और उनके बैलों को तेज प्यास लगी हुई थी। यहाँ कुआँ देखा तो रुक गये। उस समय कमाली यहाँ पानी भर रही थी। उन्होंने पानी पिलाने की याचना की और कमाली ने उन्हें प्रेमपूर्वक पानी पिलाया भी। प्यास बुझ जाने पर सर्वानन्द को अपना मकसद याद आया और उन्होंने कमाली से ही कबीर साहब के घर का पता पूछा। कमाली ने बताया तो, लेकिन बहुत गहरे और दार्शनिक अंदाज में कबीर साहब के ही दोहे के जरिये–
कबीर का घर सिखर पर, जहां सिलहिली गैल।
पांव न टिकै पिपील का, पंडित लादे बैल।।
आम-सी दिखती कमाली से ऐसे वचन सुनकर सर्वानन्द दंग रह गये। उनकी चेतना पर कबीर साहब की महिमा की यह पहली छाप थी।
जल्दी ही सर्वानन्द ने शास्त्रार्थ के लिए कबीर साहब को जा घेरा, लेकिन वे राजी न हुए। वे 'कागज-लेखी' के उस पंडित को 'आँखिन-देखी' की अनुभूति कराना चाहते थे। पं. सर्वानन्द के बार-बार उकसाने पर भी वे तैयार न हुए। उन्होंने शास्त्रार्थ नहीं किया और विनम्रतापूर्वक अपनी हार स्वीकार कर ली। लेकिन कबीर साहब द्वारा मंजूर इस हार को भी पं. सर्वानन्द कागज पर दर्ज करा लेना चाहते थे, ताकि सनद रहे और भविष्य में काम आये। सो, उन्होंने कागज पर लिखवाकर ले लिया कि 'कबीर हारा और सर्वानन्द जीता'।
लेकिन घर लौटकर सर्वानन्द ने जब अपनी माँ को अपनी इस जीत का पट्टा दिखाना चाहा तो वहाँ उन्होंने उस कागज में उल्टा ही लिखा पाया– 'कबीर जीता और सर्वानन्द हारा'। इस चमत्कार ने सर्वानन्द की आँखें ही खोल दीं और कागजी विद्वता का उनका दम्भ चूरचूर हो गया। वे उल्टे पाँव भागे-भागे फिर काशी आये। आकर इसी कबीरचौरा-परिसर में कबीर साहब के चरणों में लोट गये और उन्हीं के शिष्य हो गये। 'आँखिन देखी' के यहाँ के सच के सामने 'कागज लेखी' की उनकी विद्वता बेमानी हो गयी थी। किताबें उनके लिए इतनी व्यर्थ हो गयीं कि महापंडित होते हुए भी वे जीवन में फिर किसी किताब की ओर नहीं मुड़े। यही पं. सर्वानन्द आगे चलकर आचार्य सुरतिगोपाल साहब हुए। कबीर साहब के परिनिर्वाण के बाद उन्हें ही इस कबीरचौरामठ मूलगादी का आचार्य-महंत-पीठाधीश्वर नियुक्त किया गया और उन्हीं के हाथों में सौंपी गयी कबीरपंथ की बागडोर।
कबीरचौरामठ मूलगादी पीठ